मौलाना सै0 इब्ने हसन जारचवी साहब क़िब्ला

जेहाद

अल्लाह! अल्लाह! जेहाद के बारे में दुनिया की सोच कितनी ग़लत है। जहाँ यह लफ़्ज़ मुँह से निकला नेज़े, तलवारें, हथियारबन्द सिपाही, तड़पती हुई लाशें और ख़ून के बहते हुए दरिया नज़र के सामने आने लगे। क्या यही जेहाद है? सादिक़े आले मुहम्मद[स०] ने जेहाद की चार क़िस्में बतायी हैं, जिनमें से दो फ़र्ज़ हैं। इन्सान का अल्लाह की नाफ़रमानियों से बचने के लिए अपने नफ़्स से जेहाद करना, ये सबसे बड़ा जेहाद है। जो काफ़िर मुसलमानों पर हमला करते हों उनसे बचाव के लिए जेहाद करना। अगर दुश्मन मुसलमानों पर हमला करे तो मुसलमानों पर बचाव करना वाजिब है। अगर मुसलमान बचाव से हटें तो अकेले इमाम पर सुन्नत है कि मुसलमानों के साथ दुश्मन से लड़े। किसी मिटी हुई सुन्नत को दोबारा जारी करना सबसे अच्छा अमल है, और ये जेहाद भी सुन्नत है।"

दूसरी हदीस में इरशाद होता है कि एक बार ख़ुदा के रसूल[स०] ने मुसलमानों को किसी जंग पर भेजा। जब वह वहाँ से वापस हुए तो फ़रमायाः "उस गिरोह का आना मुबारक हो जो छोटे जेहाद को पूरा कर चुका, और बड़ा जेहाद अभी बाक़ी है।" किसी ने पूछा "ऐ ख़ुदा के रसूल[स०] बड़ा जेहाद क्या है?" फ़रमायाः "नफ़्स का जेहाद"

असल में नासमझी की वजह ये है कि लोगों ने जेहाद और ख़ून-ख़राबे के मतलब को एक ही समझ लिया है। जबकि जेहाद का मतलब मेहनत और कोशिश करना है।

इस्लाम जिस वक़्त दुनिया में आया तो आदम की औलाद दो हिस्सों में बटी हुई नज़र आती थी। एक वह जो दुनिया वाले कहलाते थे और अपने आपको बाक़ी रखने की कोशिश में मर्दानगी दिखाते हुए हिस्सा लेते थे। इनके मुक़ाबले में दूसरा गिरोह दीनदारों का था जो ख़ानख़ाहों, ग़ारों, कलीसाओं में बेअमली की ज़िन्दगी गुज़ारने को नजात पाने वाली और हाथ पैर चलाकर कमाने खाने को गुनाह और बुराई समझता था। इस्लाम ने आकर सुस्त और सन्यासी लोगों को बताया कि दीन बेअमली का नाम नहीं है, बल्कि वह पूरा का पूरा मुक़ाबला और मुजाहेदा करने का नाम है।

"ईमान वालों में से जिनको कोई जिस्मानी मजबूरी न हो और फिर (घर में हाथ पर हाथ रखे) बैठे रहें और वह जो ख़ुदा के रास्ते में अपनी जान और माल से जेहाद कर रहे हों बराबर नहीं, अल्लाह ने अपनी जान और माल से जेहाद करने वालों को घर बैठ रहने वालों पर दर्जे के हिसाब से फ़ज़ीलत अता की है। और हर एक से ख़ुदा ने भलाई का वादा किया है। और जेहाद करने वालों को घर बैठ रहने वालों पर बड़े इनाम की फ़ज़ीलत बख़्शी है।" (निसा-95)

अल्लाह ने मोमिनों की निशानी ये बतायी है कि वह जान और माल से अल्लाह के कलमे को बलन्द करने के लिए कोशिश करता रहे।

"मोमिन वही है जो अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाये और फिर उसमें शक और शुब्हा न

किया और अपने माल और जान से ख़ुदा के रास्ते में जेहाद किया।"

(हुजरात-15)

जो लोग अल्लाह के रास्ते में कोशिश करते हैं, ख़ुदा उन पर तरक़्क़ी के नये-नये रास्ते खोलता रहता है।

"और जो हमारे रास्ते में कोशिश करते हैं हम उनके लिये अपने और रास्ते भी खोलते रहते हैं।"

(अनकबूत-69)

बेशक हक़ की हिमायत में लड़ना भी जेहाद है। और मुहम्मद[स०] व आले मुहम्मद[अ०] ने ज़्यादा तर जान बचाने और ईमान की हिफ़ाज़त करने के लिए जंग की है। मगर जैसा कि इस किताब में बारबार बयान हुआ है उनकी जंगें बिला वजह मुल्कों पर क़ब्ज़ा करने और लूटमार के लिये नहीं थीं।

"जान की हिफ़ाज़त" काएनात का हमेशा का क़ानून है। और इस पर अमल करना फ़ितरत की वजह से है। इस्लाम अगर बचाव करने के लिए भी जंग की इजाज़त न देता तो इन्सानी दीन कहलाने का मुस्तहक़ न बनता।

यह इस्लामी ख़याल की बलन्दी है कि वह मज़लूमों की बचाव की जंग को इबादत का दर्जा देता है:

"फिर जिन्होंने अपना (घर बार छोड़कर) हिजरत की, और अपने घरों से निकाले गये, और मेरे रास्ते में सताये गये और उन्होंने जंग की और क़त्ल हुए, तो मैं उनके गुनाहों को मुआफ़ कर दूँगा और उनको जन्नत में दाख़िल करूँगा।" (आले इमरान-190)

मुसलमानों की क़ातिलाना लड़ाईयों के बारे में आले मुहम्मद[अ०] की राय

मुसलमान बादशाहों ने अरबी तहज़ीब और हुकूमत को फैलाने के लिए जो लड़ाईयाँ लड़ीं आले मुहम्मद ने उनमें कभी हिस्सा नहीं लिया। वह समझते थे कि इस्लाम दुनिया में इसलिए नहीं आया कि वह एक को दूसरे का गुलाम बनाने में मदद दे।

बनी उमैय्या के ज़माने में जब मुसलमानों की हुकूमत का सैलाब एशिया और अफ़्रीक़ा से गुज़र कर यूरोपी मुल्कों तक पहुँच चुका था, जब जीते हुए मुल्कों की दौलत सिमट-सिमट कर अरबों के घरों में आ रही थी, जब हर वह शख़्स जो हाथ में तलवार रखता था किसी न किसी इलाक़े ज़िम्मेदार, किसी न किसी फौज का अफ़सर बनने और इतनी दौलत इकटठा करने की आरज़ू रखता था जो उसकी पुश्तों के लिए काफ़ी हो।

"एक शख़्स ने इमाम ज़ैनुलआबिदीन अलैहिस्सलाम को ताना दिया कि आप हज तो बराबर करते हैं कि वह एक आसान काम है मगर जेहाद की सख़्ती से घबराकर उसमें हिस्सा नहीं लेते, हालांकि क़ुर्आन शरीफ़ में अल्लाह तआला का ये इरशाद मौजूद है:

"बेशक अल्लाह ने ईमान वालों से उनके जान और माल जन्नत के बदले में ख़रीद लिये हैं वह अल्लाह के रास्ते में मुक़ाबला करते हैं। मारते हैं और मरते हैं। यह वह वादा है जो तौरेत, इन्जील और क़ुरआन में उसने अपने ऊपर लाज़िम किया है। और अल्लाह से ज़्यादा वादे का पूरा करने वाला कौन होगा। बस उस सौदे पर जो तुमने किया है मगन रहो कि यह बड़ी कामयाबी है।"

(तौबा-112)

हज़रत इमाम ज़ैनुलआबिदीन[अ०] ने फ़रमाया कि ज़रा इस आयत को पूरा तो पढ़िये। उसने पढ़ना शुरु किया:

"यह वह लोग हैं जो तौबा करने वाले, इबादत करने वाले, ख़ुदा की तारीफ करने वाले, रोज़े रखने वाले, (या ख़ुदा के रास्ते में सफ़र करने वाले) रुकू और सजदे करने वाले, नेक कामों का हुक्म देने वाले, बुरे कामों से रोकने वाले और अल्लाह की तैय की हुई हदों की हिफ़ाज़त करने वाले हैं। ऐसे ही मोमिनों को ख़ुशख़बरी दो।" (तौबा-112)

हज़रत ने फ़रमाया जब इन ख़ूबियों के लोगों को हम जेहाद करता हुआ पायेंगे तो यक़ीनन उनके साथ शामिल होंगे कि उस वक़्त जेहाद करना हज से बेहतर होगा।'' (काफ़ी किताबुल जेहाद)

ग़ौर कीजिये और हज़रत के इरशाद का मज़ा लीजिये कि आपने किस ख़ूबसूरती से उस ज़माने की हुकूमत और उसके काम करने वालों के हालात पर रौशनी डाली है; और इस तरह हमको यह तालीम दी है कि हर वह सिपाही जो लूटमार और क़त्ल व बर्बादी के लिए किसी मुल्क पर जा चढ़े ''अल्लाह के रास्ते में जेहाद करने वाला'' नहीं बन जाता।

क्योंकि ख़ुदा के नज़दीक कामयाबी और जीत के बाद मुसलमानों का फ़र्ज़ लूटमार के बजाये इस्लामी क़ानून को फैलाना, बुरी बातों को दूर करना और अच्छी बातों को रवाज देना है।

''वह लोग कि अगर हम उनको ज़मीन पर क़ब्ज़ा दे दें तो वह नमाज़ को क़ायम करें, ज़कात अदा करें, अच्छी बातों का हुक्म दें और बुरी बातों से रोकें।'' (हज-41)

आदाबे जेहाद

नीचे हज़रत अली अलैहिस्सलाम के दो हुक्म पढ़िये और अन्दाज़ा लगाइये कि तलवार से जेहाद में बचाव की हदों का कितना ख़याल और बग़ैर ज़रूरत ख़ून-ख़राबे से किस हद तक बचा जाता था।

''जब तक वह ख़ुद (जंग की शुरुआत) न करें उनसे न लड़ो, क्योंकि एक हुज्जत पर तो तुम (पहले ही से) क़ायम हो, अब इनकी तरफ से छोड़छाड़ शुरु होने तक जो इनको अपने हाल पर छोड़ दोगे तो दूसरी हुज्जत भी तुम्हारे हाथ आ जायेगी; और जब ख़ुदा के हुक्म से वह हार जायें तो किसी भागने वाले को क़त्ल न करना, जो अपनी जान बचाने से मजबूर हो उस पर टूट न पड़ना, ज़ख़्मी हो हलाक न करना और औरतों को तकलीफ पहुँचाकर परेशान न करना, अगरचे वह तुमको बुरा भला कहें और तुम्हारे सरदारों को गालियाँ ही क्यों न दें। बात यह है कि वह कम ताक़त, कमज़ोर दिल और कम अक़्ल वाली होती हैं। (अल्लाह के रसूल[स०] ने अपने ज़माने में) हमको हुक्म दिया था कि हम औरतों से कुछ झगड़ा न करें, हालांकि वह औरतें शिर्क करने वाली थीं।''

(नहजुल बलाग़ह)

उस ख़ुदा से डरो जिससे एक दिन तुमको ज़रूर मिलना है; और जिसके सिवा तुम्हारे लिये कोई ठिकाना नहीं है। और जंग व लड़ाई न करो मगर उस शख़्स से जो तुमसे जंग व लड़ाई करे। सुबह और शाम सफ़र करो कि ये दोनों ठण्डे वक़्त हैं और दोपहर के वक़्त लोगों को ठहरा दिया करो। चलने में आराम और आसानी का ख़याल रखा करो। और रात में सफ़र न करो कि ख़ुदा ने उसको सुकून और ठहरने का वक़्त बनाया है, न कि सफ़र का। बस रात के वक़्त तुम अपने बदन और अपने ऊँटों को आराम दो। फिर जब सहर या फ़ज्र निकल आये तो खड़े हो जाओ और ख़ुदा की बरकत के साथ चलना शुरु कर दो। जब दुश्मन की फ़ौज के क़रीब पहुँचो तो अपने साथियों के बीच ठहरो। दुश्मन की फ़ौज के बिल्कुल क़रीब न हो जाना कि यह तरीक़ा उसका है जो ख़ुद ही जंग को भड़काना चाहता है और न बहुत ज़्यादा दूर ही रहना कि यह तरीक़ा उसका है जो लोगों से डरता है। (इसी हालत में रहना) यहाँ तक कि मेरा हुक्म तुम्हारे पास पहुँचे। देखना ऐसा न हो कि हक़ की तरफ़ दावत देने और कमज़ोरी और हुज्जत पूरी करने से पहले दुश्मनी और हसद तुमको उनसे लड़ने पर तैयार करे।

(नहजुल बलाग़ह)